IJCRT.ORG ISSN : 2320-2882

INTERNATIONAL JOURNAL OF CREATIVE RESEARCH THOUGHTS (IJCRT)

An International Open Access, Peer-reviewed, Refereed Journal

वर्तमान सामाजिक व्यवस्था एवं वैष्णव धर्म

डॉ0 संध्या रानी

एम०ए०, पीएच०डी०

तिलकामांझी भागलपुर विश्वविद्यालय, भागलपुर, बिहार

सार–संक्षेप :

वैष्णव धर्म ने इन जनजातियों को ब्राह्मणधर्मी सामाजिक व्यवस्था के अन्तर्गत समाविष्ट एवं समायोजित करने के लिए एक प्रबल साधन प्रदान किया। गीता वर्णानुशासन की पृष्ठभूमि में ही भक्ति का उपदेश देती है। ई0 सन् की दूसरी शताब्दी में मिश्रित जाति एवं आदिवासी मूल के सातवाहन वंशी नरेश गौतमीपुत्र को ब्राह्मणों का अनन्य पक्षपोषक तथा वर्ण व्यवस्था का समर्थक घोषित किया गया है। वास्तव में वैष्णव धर्म के अन्तर्गत सम्पन्न संहितावाद का स्वरूप ही यानी देवताओं का विष्णु के अवतारों रूपों तथा अधीनस्थ सहयोगियों के रूप में समावेश ब्राह्मणधर्मी सांचे में लौकिक देवताओं का एक साथ संयोजन सूचित करता है। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि वासुदेव कृष्ण तथा संकर्षण की उपासना मूलतः अवैदिक और लौकिक मूल की थी। उनकी पूजा का ब्राह्मणीकरण शास्त्र सम्मत देवता नारायण विष्णु के साथ उनके एकीकरण के द्वारा हुआ कहा गया है कि महाभारत के नारायणीय खण्ड का मुख्य लक्ष्य वासुदेव और नारायण के बीच तादात्म्य स्थापित करना है। समर्थन में यह कहा जा सकता है कि इस खण्ड में नारद के द्वारा विष्णु की जो स्तुति गाई गई है, उसमें उनके 169 उपमान हैं, जिनमें से अधिकांश ब्राह्मणो योगियों तथा यज्ञो से संबद्ध हैं।

शब्द कुंजी : *सामाजिक व्यवस्था, सम्प्रदाय व्यवसाय , सामाजिक विभाजन, वैष्णव धर्म में ही अंतर्लीन*

भूमिका

काल का जनसमुदाय मूर्तिपूजक भक्तिवादी सम्प्रदाय की ओर आकृष्ट होने लगा तथा उसका समर्थन करने लगा और बहुधा पशुबलि दिये जाने वाले वैदिक याज्ञिक कर्मकाण्ड की लोकप्रियता में काफी कमी आ गयी था। याज्ञिक अनुष्ठान की मांग में कमी हो जाने के कारण ब्राह्मणों की स्थिति शोचनीय हो गयी थी, जिससे वे जीविका के कुछ अन्य साधनों का सहारा लेने के लिए बाध्य हो गये। इस विकट असमंजस पूर्ण परिस्थितियों में उनकी दृष्टि बहुत से जनजातीय एवं अवैदिक देवताओं की उपासना की ओर गया। जब नवीन आर्थिक एवं राजनीतिक समीकरण स्थापित वर्तमान सामाजिक व्यवस्था को गम्भीर रूप से चुनौती दे रहे थे उस समय इन देवताओं की पूजा को शास्त्र सम्मत बनाने का सर्वसम्मत पुरजोर प्रयास प्रारम्भ हुआ। ई0पू0 200 से 200 ई0 तक की अवधि में अनेक नवीन कलाओं और शिल्पों का विकास हुआ, साथ ही व्यापार और उद्योग में भी उल्लेखनीय प्रगति हुई जिसके फलस्वरूप निम्न वर्णों विशेष रूप से इन व्यवसायों में लगे शूद्रों के स्तर में

अनिवार्य रूप से सुधार हुआ। बड़ी संख्या में विदेशी जातियों के आगमन ने ब्राह्मण धर्मी सामाजिक व्यवस्था के बन्धनों को और ढीला कर दिया। निम्न वर्णों के प्रति अति संकुचित दृष्टिकोण के कारण वैदिक धर्म नई शक्तियों का सामना करने के नितान्त, अनुपयुक्त था और बौद्ध धर्म बहुत लोकप्रिय होता जा रहा था। ब्राह्मणों ने मुख्यतः बौद्ध धर्म का प्रतिरोध करने तथा ब्राह्मण धर्मी सामाजिक व्यवस्था को बनाए रखने के उद्देश्य से ही जनसाधारण में व्यापक रूप से प्रचलित लोकप्रिय देवताओं की उपासना पर अपना अधिकार जमा लिया और उनकी पूजा में अहिंसा के सिद्धान्त का, भक्ति की भावना का तथा पद और प्रतिष्ठा से व्युत्पन्न प्रभुता के प्रति आज्ञाकारिता के भाव का समावेश किया और इस प्रकार उसे विद्यमान सामाजिक परिस्थितियों के अनुरूप नए सांचे में ढाला। उन्होंने स्त्रियों तथा निम्न वर्णो के प्रति उदार रूख अपनाया, पर साथ ही उन्होने वर्ण पर आधारित सामाजिक विभाजन को सुरक्षित बनाए रखने की चेष्टा की।

वैष्णव धर्म का उद्भव लोकप्रिय देवताओं की उपासना के ब्राह्मणीकरण के प्रयास के क्रम में नारायण विष्णु के साथ इन देवताओं के एकीकरण से हुआ, और इस प्रकार वैष्णव धर्म ने उच्च वर्गों के वर्णगत आचार नियमों का प्रसारित करने में तथा जनसाधारण को सामाजिक असन्तुलन से सामंजस्य बनाने में सहायता प्रदान की। शेष संकर्षण के आयुध तथा उनके पराक्रम के कार्यो से ज्ञात होता है कि वे कृषक वर्ग के बीच लोकप्रिय थे। वासुदेव कृष्ण महाभारत के अधिकांश पर ऐसे जोरदार ढंग से हावी हैं कि उनके आख्यानों के लिए हरिवंश पुराण के रूप में एक पृथक परिशिष्ट की आवश्यकता पड़ी। उनकी कथाओं की श्रृंगारी प्रवृत्ति, वन्य पृष्ठभूमि में चित्रित उनके शैशव का सरल परिवेश तथा उनके अपौरूषेय पराक्रम ग्रामीण मानस को पूर्णतया भाने वाले हैं और इनसे उनके जनसाधारण के लोकप्रिय देवता होने का पता चलता हैं। मनु सात्वतों को, जिनके बीच वासुदेव कृष्ण उत्पन्न हुए थे, वैश्य–व्रात्यों की संतान के रूप में वर्णित करते हैं। इससे प्रकट होता है कि सात्वत वृष्णि (कबीला) वर्ण विभाजित समाज के आचार–व्यवहार का अनुसरण नहीं करता था, और वह खाद्य–उत्पादन अर्थात पशुपालन, कृषि एवं व्यापार का काम जनजातीय पद्धति पर चलाता था। इसलिए सनातनी वर्ण व्यवस्थापकों ने उसे वैश्य व्रात्यों के दर्जे में रख दिया। स्पष्ट है कि काफी आगे चलकर जब वृष्णि नायकों की शौर्य कथाएं ब्राह्मणीय देव समूह की गाथा का अंग बन गई तथा कृष्ण एक महान योद्धा देवता बना दिया गया तभी वृष्णियों को क्षत्रिय पद प्रदान किया गया। उर्वरता की देवी श्री की उपासना व्यापारियों, साहूकारों तथा कृषकों के बीच जिनमें वैश्य और शूद्र जातियों का समावेश था असंदिग्ध रूप से सर्वाधिक लोकप्रिय थी।

श्री का जनसमुदाय में भी हो गया। वास्तव में वैष्णव धर्म के अन्तर्गत सम्पन्न संहितावाद का स्वरूप ही यानी देवताओं का विष्णु के अवतारों रूपों तथा अधीनस्थ सहयोगियों के रूप में समावेश ब्राह्मणधर्मी सांचे में लौकिक देवताओं का एक साथ संयोजन सूचित करता है। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि वासुदेव कृष्ण तथा संकर्षण की उपासना मूलतः अवैदिक और लौकिक मूल की थी। उनकी पूजा का ब्राह्मणीकरण शास्त्र सम्मत देवता नारायण विष्णु के साथ उनके एकीकरण के द्वारा हुआ कहा गया है कि महाभारत के नारायणीय खण्ड का मुख्य लक्ष्य वासुदेव और नारायण के बीच तादात्म्य स्थापित करना है। समर्थन में यह कहा जा सकता है कि इस खण्ड में नारद के द्वारा विष्णु की जो स्तुति गाई गई है, उसमें उनके 169 उपमान हैं, जिनमें से अधिकांश ब्राह्मणो योगियों तथा यज्ञो से संबद्ध हैं। इससे नारायण विष्णु वासुदेव की संहितिवादी उपासना के अन्तर्गत ब्राह्मणीय विचारधारा के प्रधान्य का पता चलता है। अवैदिक मूल के प्रमुख देवता नारायण बहुत प्राचीन काल में

ही वैदिक धर्म के अन्तर्गत लाए जा चुके थे; क्योकि शतपथ ब्राह्मण उनका सम्बन्ध पुरूष सूक्त की एक ऋचा से जोड़ता है जो समाज के चतुर्वर्गीय विभाजन का उल्लेख करने वाला प्राचीनतम प्रमाण है। इससे स्पष्ट रूप से पता चलता है कि इस ग्रन्थ के रचना काल तक उनके उपासकों का कम से कम एक वर्ग वर्णव्यवस्था को स्वीकार कर चुका था। नारायण के उपासक दो प्रकार के थे; एक वे जो वर्ण नियमों की अवहेलना करते थे तथा प्रारम्भिक अनुष्ठानों से अभी भी जुड़े हुए थे और पंचरात्र के नाम से विख्यात थे; दूसरे वे जो ब्राह्मणीय समाज व्यवस्था तथा वेदों के प्रमाण स्वीकार कराते थे और भागवतों के नाम से प्रसिद्ध थे। पूजा की पंचरात्र विधि शायद निम्न वर्गो के बीच प्रचलित रही हो; किन्तु, चूंकि स्रोत प्रायः समाज के केवल उच्च वर्गो के ही दृष्टिकोण को प्रकट करते है, इसलिए जनसाधारण के बीच इसकी लोकप्रियता की मात्रा का अनुमान करना कठिन है। संभवतः भागवत धर्म की प्रगति और लोकप्रियता के कारण पंचरात्र धर्म का प्रभाव बहुत क्षीण होता गया और चूंकि गुप्तकाल में इस सम्प्रदाय का भी ब्राह्मणीकरण प्रारम्भ हो ही चुका था अंततः वैष्णव धर्म में ही अंतर्लीन हो गया प्रतीत होता है। ई0पू0 प्रथम शताब्दी में ही भागवत धर्म को उच्च जाति के शासकों का संरक्षण प्राप्त हो चुका था। एक अभिलेख में राजा भागवत के शासन काल के बारहवें वर्ष में गौतमी के पुत्र एक भागवत के द्वारा गरूड़ स्तम्भ के निर्माण का उल्लेख है। जैसा कि इस नाम से इंगित होता है, राजा भागवत जो शुंग वंश के अन्तिम राजा के ठीक पूर्ववर्ती राजा के साथ अभिज्ञापित किए जाते हैं, भागवत धर्म के प्रति स्पष्टतः झुकाव रखते थे। ई0पू0 प्रथम शताब्दी के एक अन्य अभिलेख में एक भागवत नरेश सर्वतात् गजायन, जिनकी माता पराशर गोत्र की महिला थी, का उल्लेख मिलता है। उन्होंने एक अश्वमेघ यज्ञ किया था तथा भगवान नारायण के अहाते (नारायण वाटिका) में भगवत संकर्षण एवं भगवत वासुदेव के लिए प्राचीर का भी निर्माण कराया था। कुछ विद्वानों की राय में सर्वतात एक कण्व राजा था। कण्वों को कण्वायण गोत्र का ब्राह्मण होने का अनुमान किया गया है। पुराणों में भी नारायण नामक एक कण्व नरेश की चर्चा है। अतः स्पष्ट है कि ब्राह्मणधर्मी शासक वर्गों में भागवत धर्म काफी लोकप्रिय था।

प्रत्यक्षतः वैष्णव धर्म ने उन विदेशियों तथा आदिवासी जातियों के आर्यीकरण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी, जिनका परवर्ती मुसलमानों की तरह न तो अपना कोई प्रबल धर्म या सम्प्रदाय था और न सुविकसित संस्कृति ही थी। मनुस्मृति में कहा गया है कि पवित्र धार्मिक संस्कारों तथा ब्राह्मणों की अवहेलना करने के कारण ही पौंड्रक, चोल, द्रविड़, कंबोज, यवन (ग्रीक), शक (सिथियन), पारद, पह्लव (पार्थियन) चीनी, किरात तथा दरद जातियां शनैः शनैः शूद्रों की श्रेणी में गिर गए हैं; और भागवत पुराण में कहा गया है कि किरात, हूण, आंध्र, पुलिंद, पुल्कस, आभीर, कंक, यवन, खस तथा इसी प्रकार की अन्य दुराचारी जनजातियां विष्णु पूजन से पवित्र हो जाती हैं। इस प्रकार वैष्णव धर्म ने इन जनजातियों को ब्राह्मणधर्मी सामाजिक व्यवस्था के अन्तर्गत समाविष्ट एवं समायोजित करने के लिए एक प्रबल साधन प्रदान किया। गीता वर्णानुशासन की पृष्ठभूमि में ही भक्ति का उपदेश देती है। ई0 सन् की दूसरी शताब्दी में मिश्रित जाति एवं आदिवासी मूल के सातवाहन वंशी नरेश गौतमीपुत्र को ब्राह्मणों का अनन्य पक्षपोषक तथा वर्ण व्यवस्था का समर्थक घोषित किया गया है। कुषाण नरेशों ने जिन्होने देवपुत्र की उपाधि धारण कर अपना देवत्व सिद्ध करने का प्रयास किया था, अपने मृत पूर्वजों की प्रतिमाओं से अंतर्विष्ट 'देवकुल' कहे जाने वाले देवायतनों की स्थापना की थी। इन देवकुलों की मरम्मत को पुण्य कार्य माना जाता था। इन देवकुलों की स्थापना संभवतः वृष्णि देवताओं से अधिष्ठित मंदिरों के नमूने पर

की गई थी, जिनकी पूजा विदेशियों में काफी प्रचलित प्रतीत होती है। 'देवकुल' शब्द, जिसका अर्थ मंदिर या देवगृह होता है, देवता के कुल या परिवार का भी वाचक हो सकता है; और यह संभव है कि प्रारंभ में इसका प्रयोग उन्ही देवायतनों के लिए हुआ हो, जिनमें एक परिवार के ही कई देवताओं की प्रतिमाएं अधिष्ठित रही हो, जैसे कि वृष्णिवीरों के मंदिर में होती थी। कुषाण राजाओ ने इस नीति को अपने पूर्वजों के निमित्त समर्पित देवायतनों में अपनाया। भास के 'प्रतिमा नाटक' में भरत अपने चार मृत पूर्वजों की प्रतिमा वाले देवकुल को देवताओं, प्रत्यक्षतः चार वृष्णि देवताओं, वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न एवं अनिरुद्ध का देवायतन समझने की भूल कर बैठते हैं। इससे जाना जा सकता है कि राजपरिवारों के पैत्रिक देवकुल वृष्णि देवकुलों के साधर्म्य पर ही निर्मित किए गये थे, जिनके विषय में ऐतिहासिक दृष्टांत केवल कुषाणों के ही उपलब्ध हैं। कुषाण राजाओं के देवत्वारोपण ने तत्कालीन तथा परवर्ती शासकों पर गहरी छाप डाली, जिनमें से कुछ अपने अंदर भी देवत्व दिखलाने के लिए प्रयत्नशील दिखायी देते हैं। बनर्जी का कहना है कि सिक्कों पर अंकित कुषाण राजाओं के सिर के चारों ओर का प्रभामंडल, उनके देवत्व के मिथ्याभिमान का द्योतक है। यह लक्षण गुप्त सिक्कों पर भी सुरक्षित रखा गया है, जिसमें राजा अविकार्य रूप से प्रभामंडल से युक्त ही चित्रित किया गया है। राजा 'पृथिव्यामप्रतिरथः', अर्थात पृथ्वी पर अद्वितीय योद्धा के रूप में वर्णित है। 'अप्रतिरथ' विष्णु का एक नाम है जो उनके सहस्र नामों की सूची में सम्मिलित है। समुद्रगुप्त ने यह उपाधि अपने धनुर्धर छाप के सिक्को पर धारण की थी। एलान का कथन है कि सिक्कों के ऊपर हाथ में धनुष लिए हुए राजा का चित्रण, 'शार्ङ्गि' अर्थात धनुर्धर के रूप में विष्णु की ओर संकेत करता है। अप्रतिरथ की उपाधि एक अन्य गुप्त नरेश, चन्द्रगुप्त द्वितीय, ने धारण की थी। छाबड़ा स्कंदगुप्त के भीतरी अभिलेख में चन्द्रगुप्त द्वितीय के लिए प्रयुक्त एक वाक्यांश 'स्वयं चाप्रतिरथः' की ओर ध्यान आकृष्ट करते हैं और इसकी व्याख्या, 'वह जो अप्रतिरथ का अवतार था' के रूप में करते हैं। संभवतः छाबड़ा का यह निष्कर्ष बिलकुल सही है कि उक्त वाक्याँश में 'स्वयम्' का समावेश बिना कारणवश नही हो सकता; इसकी आवृत्ति स्कंदगुप्त के बिहार प्रस्तर स्तंभाभिलेख में भी की गई है।

राजाश्रित चारण आपने आश्रयदाताओं के दैवी चरित्र की ओर स्पष्टतः संकेत करते थे तथा सूक्ष्म रूप से विष्णु के साथ उनकी अनन्यता व्यंजित करते थे। कुमार गुप्त के सिंह मर्दन छाप वाले सिक्को के मुद्रालेख में लिखा है, 'साक्षादिव नरसिंहों सिंह महेंद्रो जयत्यनिशम् अर्थात सिंह (नरों में) महेन्द्र मानो नरसिंहावतार है। यहां राजा को, भगवान नरसिंह के साक्षात अवतार के रूप में जान लिया जाने का प्रयत्न है। उसके उत्तराधिकारी स्कन्दगुप्त के धनुर्धर छाप वाले सोने के सिक्के पर छपी 'सुधन्वी' उपाधि फलितार्थ द्वारा विष्णु की ओर संकेत करती है। महाभारत तथा पुराणों में राजत्व के देवत्व की बात प्रायः जोर देकर कही गई है और इसके साथ विष्णु को संबद्ध किया गया है। भगवद्गीता का कथन है कि राजा को मनुष्यों के बीच देवता की अभिव्यक्ति के रूप में समझा जाना चाहिए। राजसत्ता की दैवी उत्पत्ति की घोषणा उत्तर वैदिक साहित्य के कुछ अवतरणों तथा कुछ अन्य ग्रन्थों में भी की गई है, जो निश्चित रूप से गुप्तयुग से पहले के है; किन्तु ये ग्रन्थ राजसत्ता को सामान्यतः प्रजापति, इन्द्र, यम, वरूण, कुबेर तथा कुछ अन्य देवताओं के साथ सम्बन्धित करते हैं। विष्णु के साथ निश्चित सम्बन्ध केवल महाभारत और पुराणों में स्थापित किया गया है जिनका अन्तिम संस्करण गुप्तयुग में हुआ। पुराणों में राजाओं की चर्चा प्रायः विष्णु के अंशावतारों के रूप में की गई है। इस बात का उल्लेख बार–बार किया गया है कि सभी युगों में चक्रवर्ती सम्राट अपने अंदर विष्णु का अंश लिए पृथ्वी पर उत्पन्न होते

हैं। विष्णु पुराण इससे एक कदम और आगे जाता है क्योंकि वहां ऐसी भाषा में, जो बौद्धो के बोधसत्व सिद्धान्त की याद दिलाती है, कहा गया है कि प्राणियों के सभी वर्गो के सभी राजा जो जन्म ले चुके हैं या लेगें विष्णु के अंशावतार है; विष्णु को छोड़कर अन्य कोई भी पृथ्वी की रक्षा करने मे समर्थ नहीं है। परमश्रेष्ठ सम्राट के हाथ पर विष्णु के चक्र का चिन्ह होता है। इसी प्रकार की भावनाएं चन्द्रगुप्त द्वितीय के समय में लिखे गये ग्रन्थ विष्णु धर्मोत्तर पुराण में व्यक्त की गई हैं। इस ग्रन्थ में कहा गया है कि राजा विष्णु से युक्त होकर तथा अपने शरीर में देवत्व का सत्व धारण करके जनता की रक्षा के लिये मानव के रूप में जन्म लेता है। अवतारवाद के सि़द्धान्त ने भी राजाओं के दैवीकरण की दिशा में योगदान दिया और विष्णु के दो सुप्रसिद्व अवतार, राम दाशरथी और कृष्ण क्षत्रिय शासक थे। इस सिद्वान्त को कुछ पौराणिक राजाओं; यथा, पुरंजय, भीमरथ, पंचजय, तथा मांधाता के संदर्भ में बार–बार प्रयुक्त किया गया है, जिन्हे विष्णु के तेज और रूप से युक्त बतलाया गया है। इस प्रकार के कथनों का स्पष्ट उद्देश्य राजा को महान देवता के रूप में मान्यता देने वाली धारणा का प्रचार करना था। राजा विष्णु का अवतार होता है, इस धारणा ने परवर्ती शासकों को भी प्रभावित किया।

प्रारम्भिक चालुक्य नरेशों ने 'श्री पृथ्वी वल्लभ' की उपाधि धारण की थी, जिसका अर्थ है विष्णु की दोनों पत्नियों 'श्री' और 'पृथ्वी', का प्रिय। गुर्जर प्रतिहार नरेश मिहिर भोज ने 'आदिवराह' की उपाधि धारण कर निश्चय ही विष्णु से अपनी अभिन्नता घोषित की थी। उसके सिक्कों के सामने वाले हिस्से पर विष्णु के चार विशिष्ट चिह्नों के साथ वराह चित्रित है और पीठ वाले हिस्से पर मुद्रालेख 'श्रीमदादिवराह' अकित है। यह बतलाया गया है कि चंपा के कुछ परवर्ती शासकों ने भी अपने आपको विष्णु के अवतार के रूप में वर्णित किया था। बड़गंगा शिलालेख के राजा भूतिवर्मन तथा माठर वंश के कुछेक वैष्णव राजाओं ने 'परम दैवत' की पदवी अपनाई थी। ई0 सन् की सातवीं शताब्दी में बाण ने राजा के देवत्व की कल्पना की खिल्ली उड़ाई थी और इसे चाटुकारों का कार्य कहा था। कई विद्वानों का कथन है कि प्राचीन भारत में देवपद काफी सस्ता था। एक तरह से हर ब्राह्मण भूदेव था और हर यज्ञकर्त्ता भी कम से कम यज्ञ संपादन की अवधि के दौरान देवता ही माना जाता था। राजा के देवत्व के सिद्धान्त का उपयोग राजा ने निरंकुशता के दैवी अधिकार का अपना दावा ठोंकने के लिए नहीं किया, क्योंकि पश्चिमी दुनिया की तरह भारत में धार्मिक और धर्मेतर शक्तियों के बीच कोई संघर्ष नहीं था। तथापि इस विचार ने धर्मेत्तर सत्ता के सामाजिक दर्जे का पदमान बढ़ाने के साथ ही उसके प्रति लोगों में श्रद्धा का भाव भरने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। हिन्दू मानस पर इसका व्यापक और गहरा प्रभाव पड़ा इसका अंदाजा सत्रहवीं सदी की एक वैष्णव रचना से लगाया जा सकता है, जिसमें 'मुसलिम दरबार के एक हिंदू अधिकारी को सर्वथा स्वाभाविक रूप से अपने मालिक को जो एक अपवित्र यवन है, विष्णु कहकर संबोधित करते हुए दिखाया गया है। गुप्तकालीन वैष्णव तथा शैव मत दोनों ही भक्ति, ब्राह्मणों के प्राधिकार एवं वर्णव्यवस्था पर आधारित थे; इस कारण, यद्यपि वैष्णव एवं शैव मतावलंबी 'परम भागवत' तथा 'परम माहेश्वर' जैसी उपाधियां धारण कर अपने अभीष्ट देवता के प्रति अपना सर्वोच्च सम्मान सूचित करते थे, तथापि वे प्रायः ब्राह्मण धर्म के देव समुदाय के अन्य देवताओं को भी आदर देते थे। परम भागवत नरेश कुमारगुप्त तथा स्कंदगुप्त ने शैव, रूचि के नाम धारण किए थे तथा कुमार गुप्त के कुछ सिक्को की पीठ पर राजा के नाम की ओर संकेत करने के लिए गरूड़ का स्थान कार्तिकेय के वाहन मयूर ने ले लिया था। 491 ई0 के एक अभिलेख में महाराज गौरी के द्वारा हर (शिव) की अर्धांगिनी 'देवी' के मन्दिर के निर्माण का उल्लेख है, उसका ही एक

और अभिलेख जिसमें तालाब बनाने की सूचना दी गई है विष्णु की वंदना से प्रारंभ होता है। मौखरी नरेश अनंतवर्मन ने ई0 सन् की छठी शताब्दी के पूर्वाद्ध में कृष्ण शिव एवं दुर्गा की प्रतिमाएं स्थापित कराई तो उनकी इस धार्मिक निष्ठा में कोई असंगति नहीं थी। उसके कुछ ही बाद गंग नरेश हस्तिवर्मन रणभीत ने, जो परम माहेश्वर तथा शिव का ही एक रूप माने जाने वाले भगवान गोकर्ण स्वामिन का भक्त कहा गया है, अपनी उपाधि के अनुरूप नारायण की 'रणभीतोदय' नामक प्रतिमा स्थापित कराई थी। विष्णु शिव एवं अन्यान्य देवताओं के ऐसे उपासक, जो विभिन्न देवताओं को अपनी श्रद्धा अर्पित करते थे तथा स्मृतियों सामाजिक आचार–विचार के नियमों का पालन करते थे, 'स्मार्त' कहे गए हैं।

गुप्त युग में शासक वर्ग के वैष्णव धर्म का यह रूप निःसन्देह सर्वाधिक लोकप्रिय रहा प्रतीत होता है और इसीलिए वैष्णव पुरोहितों का पूर्ण हार्दिक समर्थन उनके आश्रयदाताओं को प्राप्त था। महाकाव्यों के परवर्ती अंशों एवं पुराणों में नारायण विष्णु की उपासना वर्णव्यवस्था के साथ पूर्णतः युक्त है। रामायण के उत्तरकाण्ड के एक अवतरण में राम, जो स्वयं विष्णु के अवतार50 कहे गए हैं कठोर तपस्या में तल्लीन एक शूद्र तपस्वी का सिर काट देते हैं, क्योंकि तपस्या केवल ब्राह्मण ही कर सकता है। वर्ण नियमों के इस उल्लंघन के कारण किसी ब्राह्मण के पुत्र की मृत्यु हो गई थी, अतः राम तुरंत कार्यवाही करते हैं और इस प्रकार ब्राह्मण तरूण को पुनर्जीवित करते हैं। उनके इस कार्य की देवताओं तथा ऋषियों के द्वारा बड़ी प्रशंसा की जाती है। विष्णुपुराण में यम विष्णु के उपासक के लक्षण गिनाते हुए कहते हैं कि वह व्यक्ति ही वैष्णव समझा जाना चाहिए, जो अपने वर्ण धर्म के पक्ष से कभी विचलित नहीं होता। विष्णु को प्रसन्न करने के लिए वर्णनियमों के अनुसार आचरण करने के अतिरिक्त अन्य कोई मार्ग नहीं है। यही भाव विष्णु धर्मोत्तर में भी दोहराया गया है। गुप्तकाल का एक अन्य ग्रन्थ जयाख्य संहिता, वर्ण नियमों के पालन के आधार पर वर्गीकरण कर वैष्णव भक्तों के चार भेदों का उल्लेख करता है। विष्णु की संहति मूलक उपासना ने वर्णव्यवस्था का समर्थन किस सीमा तक किया था, वह इस तथ्य से समझा जा सकता है कि असीरगढ़ ताम्रमुहर अभिलेख इशान वर्मन मौखरि के प्रपितामह हरिवर्मन की तुलना, वर्णाश्रम व्यवस्था के संस्थापक के लिए अपनी राजसत्ता का प्रयोग करने में, चक्रधारी विष्णु के साथ करता है। गुप्तयुग के अनेक नरेश अपने आपको ब्राह्मणधर्मी सामाजिक अनुशासन का संरक्षक घोषित करते है। परम भागवत नरेश महाराज संक्षोभ के अभिलेखों में उनका वर्णन ऐसे व्यक्ति के रूप में है, जो वर्णाश्रम के संस्थापन के लिए कृत संकल्प है। परवर्ती अभिलेखों में यह विवरण सामान्य बन गया प्रतीत होता है, किन्तु यह तथ्य कि वर्ण नियमों का विवेचन करने वाले पौराणिक अध्याय अधिकांशतः ई0 सन् की तीसरी से पांचवी शताब्दी के बीच लिखे गये थे, स्पष्ट रूप से सिद्ध करता है कि यह आंदोलन जिसे शासक वर्ग का पूर्ण समर्थन प्राप्त था अपनी जड़ें तत्कालीन सामाजिक अवस्था में जमाए हुए था। इस संदर्भ में यशोधर्मन के 532 ई0 वाले मंदसौर अभिलेख के प्रमाण पर ध्यान दे सकते हैं। इसमें एक 'राजस्थानीय' अभयदत्त का उल्लेख एक ऐसे व्यक्ति के रूप में है, जिसने देवताओं के पुरोहितों, के समान अपने शासकीय अधिकारों के द्वारा वर्णों अर्थात चारों' मान्य वर्णों के हितार्थ राज्य की रक्षा की। उसके पद का उत्तराधिकारी उसका भतीजा धर्म दोष भी जातियों के अंतर्मिश्रण को रोकने वाले के रूप में वर्णित है। यज्ञों के प्राचीन वैदिक कर्मकाण्ड के विपरीत वैष्णव धर्म ने न केवल पुरोहितों एवं शासक वर्गों के हितों की रक्षा की अपितु निम्न वर्णों को उनके लिए निर्धारित अनुष्ठान पद्धति से विष्णु की पूजा करने का अधिकार प्रदान कर उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति भी

की। इसने किसी भी धार्मिक निष्ठा या अंधविश्वास को हानि नहीं पहुँचाई, अपितु उन्हें आत्मसात ही किया तथा किसी प्रकार का प्रतिशोध उत्पन्न किए बिना उन्हें ब्राह्मण धर्म के सांचे में ढाला। इस प्रकार यह अनेकानेक जनजातीय एवं स्थानीय देवताओं की उपासना का सफलतापूर्वक ब्राह्मणीकरण कर सका तथा सभी वर्गों एवं वर्णों के बीच लोकप्रिय हो सका।

निष्कर्षः–

मध्य काल देश के लिए एक भीषण संकट का काल था। नितांत भिन्न धारणा के लोगों के जुल्म जबर्दस्ती से यह देश आक्रांतित था। सर्वत्र आतंक तथा दैन्य छाया हुआ था। बुद्धिजीवी या विद्वान व्यक्तियों में स्वतंत्र विचार करने की शक्ति का ह्रास हुआ था और उनकी दृष्टि से मोक्ष ही साध्य था जिसके साधन थे यज्ञ कर्म, व्रत पालन पूजा अर्चा आदि। इसके कारण समाज में एक ऐसा बड़ा वर्ग था जो कर्मकाण्डियों के वश में आया था। छूआ–छूत तथा वर्णवैषम्य का काफी बोलबाला था। इस तरह सामाजिक तथा धार्मिक दास्यत्व में समाज जकड़ गया था। इस्लामी आक्रान्ताओं ने भारतीय जनमानस की भावनाओं पर आघात किया, उनके मन्दिरों एवं तीर्थ स्थलों का नष्ट किया गया, उनको धर्मान्तरण के लिए बाध्य किया गया। बहु–बेटियों, माताओं–बहनों से दुर्व्यवहार किया गया। ऐसी विषम परिस्थितियों में देश में सन्तों ने जो कार्य किया वह अद्वितीय है। भगवद्भक्ति का प्रचार करते समय उन्होंने कीर्तन, नामस्मरण के द्वारा समाज के सभी स्तरों को एकजुट करने का प्रयास किया। जाँत–पाँत से उत्पन्न होने वाली असमानता तथा सामाजिक असन्तुलन को उन्होंने दूर करने का प्रयत्न किया। उन्होंने आध्यात्मिक समता पर जोर देकर भक्ति का प्रचार किया और उस धारा में समस्त प्रजा को अंतः प्लावित कर दिया।

संदर्भ

[1] राधाकुमद मुखर्जी, ए. इ. यू., पृ. 599
[2] शर्मा, शूद्राज इन एंशिएंट इंडिया पृ. 218 एवं आगे.
[3] मनुस्मृति 10.23
[4] कृषिकार्यों के साथ शूद्रों के सबंध के लिए द्रष्टव्य शर्मा, शू. ऐ. इं., 147
[5] डी. आर. भंडारकार, ए. इं., 23 पृ. 32 एवं आगें.
[6] ए. इं. 8 पृ.60 एवं आगें, नासिक गुफा अभिलेख,सं. 2,पं. 6–7
[7] शर्मा, पोलिटिकल आइडियाज', पृ. 173 एवं आगे.
[8] आ.. स. इं. ऐ. रि., 1911–12, पृ. 124, अभिलेख की तीसरी पंक्ति द्रष्टव्य
[9] डी. आर. साहनी, ज.रा. ए. सो. 1924पृ. 402. अभिलेख की दूसरी से पांचवी पंक्ति तक द्रष्टव्य
[10] बनर्जी, डे. हि.इ., द्वितीय सं., पृ. 38